P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-2) December- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

महर्षि दयानन्द का आदर्श राष्ट्र :पं. अखिलानन्द शर्मा विरचित 'दयानन्द दिग्विजयम्' महाकाव्य के विशेष संदर्भ में

सुनीता मीरवाल
शोधार्थी,
संस्कृत विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान, भारत

आशुतोष पारीक
सहायक आचार्य,
संस्कृत विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश

आधुनिक भारत में राष्ट्र, धर्म, समाज तथा संस्कृति की अपूर्व सेवा कर आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व व कृतित्व को अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के अनेक साहित्यकारों ने सर्गबद्ध किया है, उनमें कवि अखिलानन्द विरचित "दयानन्द दिग्विजयम्" महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तत्कालीन राष्ट्रोन्नति व जनमानस के हृदय में राष्ट्रकल्याण की भावना का अदम्य संचार करने के लिए महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का प्रचार–प्रसार किया। वेदों में हमारे ऋषियों ने अपने देश व राष्ट्रभूमि के प्रति निष्ठावान् बनने, संगठित एवं जागरुक रहने और राष्ट्रोन्नति के लिए क्रियावान् बनने का संदेश प्रसारित किया। आदर्श भारत के निर्माण हेतु वैदिक मार्ग ही श्रेयस्कर है। युगपुरुष महर्षि दयानन्द के इसी अखण्डराष्ट्र की संकल्पना को कवि पं. अखिलानन्द ने अपने महाकाव्य में साहित्यिक रूप प्रदान किया है, जिसका पर्यालोचन साहित्य एवं समाज की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है।

मुख्य शब्द : आदर्श राष्ट्र, महर्षि दयानन्द, पं. अखिलानन्द, दयानन्द दिग्विजयम्, राष्ट्र कल्याण, वैदिक राष्ट्र, वेद, पाषाण पूजा, शिक्षित जनमानस, अन्धविश्वास, संघटित, राष्ट्रोन्नति।

प्रस्तावना

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[1]

वैदिक ऋषियों ने आदर्श राष्ट्र की जो परिकल्पना व्यक्त की है वही वर्तमान राष्ट्र के लिए भी अपेक्षित है अर्थात् सर्वक्षेत्रों में समान भाव से विकास। इसी प्रकार आधुनिक भारत में एक भाषा, एक भाव, एक विचारधारा और समान कर्तव्यबोध को राष्ट्र की एकता, समृद्धि तथा प्रगति के लिए अनिवार्य बताने वाले थे महर्षि दयानन्द। उन्हीं महर्षि दयानन्द के गौरवमय चरित्र और भारत को वैदिक राष्ट्र के रूप में देखे गए उनके स्वप्न को अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के अनेक साहित्यकारों ने लिपिबद्ध किया है उनमें से एक अर्वाचीन साहित्यकार पं. अखिलानन्द शर्मा ने "दयानन्द दिग्विजयम्" नामक महाकाव्य के 21 सर्गों में स्वामी दयानन्दके जीवन चरित्र, तत्कालीन राष्ट्र–दशा व राष्ट्र–कल्याण के लिए किये गए कार्यों काविशद वर्णन किया है।

ऋषि दयानन्द के हृदय में राष्ट्रवाद के प्रखर भाव उस समय उत्पन्न हुए जब उन्होंने स्वर्णभूमि के नाम से विश्वप्रसिद्ध अपने देश को विदेशी दासता के कठोर पाशों में बंधा हुआ देखा। देशवासियों की सर्वतोमुखी पतित अवस्था को देखकर वे अत्यन्त विचलित हो उठे, वस्तुतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब तक राष्ट्र के स्वाभिमान, स्वदेश के गौरव एवं अस्मिता को जागृत नहीं किया जाएगा तब तक राष्ट्र का कल्याण सम्भव नहीं होगा। स्वामी दयानन्द के राष्ट्रकल्याण की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते हैं कि जब राष्ट्रहित निजी हित से ऊपर हो जाता है तब राष्ट्र के निर्माण, उसका भविष्य सँवारने के स्वप्नों का सर्जन भी आरम्भ हो जाता है –

अथ जगदुपकारदत्तचित्तो यतिरतिपुण्यवशेन लोकपूर्णाम्।
बहुमतवितितिं निराकरिष्णुः समचलदात्मबलेन विश्वमध्यम्।।[2]

ऋषि दयानन्द ने देशवासियों को अंग्रेजों से स्वतन्त्रता प्राप्त करने एवं पाश्चात्य संस्कृति का त्याग कर प्राचीन परम्पराओं को ग्रहण करने हेतु प्रेरित करने के लिए "वेदों की ओर लौटो" का उद्घोष किया। महर्षि दयानन्द ने जिस आदर्श राष्ट्र का स्वप्न देखा था उसके कुछ अंशों का कवि अखिलानन्द के शब्दों में वर्णन इस प्रकार है –

पाषाण पूजा से विमुक्त भारत

ऋषि दयानन्द ने जिस वैदिक आदर्श राष्ट्र की कल्पना की थी उसे साकार करने के लिए व लोगों को जागृत करने के लिए उन्होंने जब सम्पूर्ण देश में भ्रमण किया तो देश में पुराण कथाएँ व मूर्ति पूजा प्रचलित थी, जिनका अनुसरण कर लोग वैदिक धर्म का परित्याग कर पाखण्ड के मार्ग को अपना रहे थे। "इस जगत् में मनुष्य रचित नाना पुराणों की जो कथाएँ प्रचलित हैं यही नाश का पहला कारण है। यह वैदिक धर्म की उन्नति न होने देगा इसलिए पहले इसका ही निराकरण करना उचित है। यह उन्होंने प्रथम निश्चय किया।"[3] महर्षि ने सर्वप्रथम पुराणों का खण्डन किया क्योंकि उनका मत था कि "जब से भारतवर्ष में नवीन पुराणों का प्रादुर्भाव हुआ है तभी से वेदों का प्रचार उठ गया, प्रतिदिन पापों का उदय होने लगा, ऋषि मुनियों की चलाई हुई प्रथा नष्ट हो गयी।"[4] इसलिए उन्होंने लोगों को वेदों को पढ़ने के लिए अभिप्रेरित किया –

मनुजनिर्मितभागवातादिका बहुपुराणकथा जगतीतले।
प्रथममास्ती निदानमदः कथं कलयतान्निगमागमविस्तृतिम्।।[5]

कवि लिखते हैं कि स्वामी दयानन्द पाषाण पूजा से मुक्त देश की कल्पना करते हैं। "उनका मानना था कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर की लोग छोटे से पत्थर के टुकड़े के रूप में पूजा करते हैं जो कि अवैदिक है।"[6] स्वामीजी ने लोगों को इससे मुक्त करने का उपदेश दिया –

जनेन मुक्तिमिच्छता विधेय एव सर्वदा,
स पञ्चयज्ञसंग्रह श्रमेण भक्तिपूर्वकम्।
विलोक्यते जगत्ययं विमुक्तिमार्ग उत्तमो–
न मूर्तिपूजनादिकँ कदापि मुक्तिदं भवेत्।।[7]

"पाषाण पूजा को वैदिक प्रमाणों से हटाकर ऋषि समस्त भूतल को दोबारा चेतन बना गए।"[8]स्वामी जी के विचार थे – "जब से भारत वर्ष में मनुष्यों ने जल में तीर्थ बुद्धि की है तभी से नाना मतों का समावेश, दरिद्रता, भय, रोग, शोक, मोह अधिक बढ़ने लगे हैं।"[9] जलों में तीर्थ बुद्धि की कल्पना मिथ्या ही है। शुद्ध जल से तो केवल शरीर ही शुद्ध होता है, आत्मा या बुद्धि नहीं –

अदि्भर्वपूंषि विमलानि भवन्ति सत्यैश्चेतांसि
भूतपदवाच्यमिदंशरीरम्।
विद्यातपोबलवशाद्विषणा विशिष्टज्ञानेन शुद्धिमुपयाति न
तीर्थतोयैः।।[10]

स्वामी दयानन्द का मत था कि "पण्डित जन तीर्थ उसी को कहते हैं जहाँ पर जाकर छः अंगों सहित चारों वेदों को पढ़कर निरस्तदोष जीव मृत्यु के डर से छुटकारा पा अमर पदवी को प्राप्त हो जाता है। ऐसा स्थान केवल गुरुकुल ही हो सकता है।"[11] स्वामीजी ने गुरुकुल को ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थान माना है। गुरुकुल ही वह स्थान है जहाँ शिक्षित सर्वश्रेष्ठ नागरिक तैयार होते हैं।

अन्धविश्वासमुक्त भारत

आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए वेद प्रचारक स्वामी दयानन्द का मानना था कि जब तक जनता में अन्धविश्वास पनप रहा है तब तक राष्ट्र परतन्त्र ही रहेगा, यदि स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है तो सर्वप्रथम मानसिक रूप से स्वतन्त्र होने की आवश्यकता है। "लोगों को धार्मिक चिह्नों यथा– तिलक, माला, रुद्राक्ष, पञ्च शिख, कषाय वस्त्र आदि को त्याग कर अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा। स्वार्थ साधन में लगे पण्डितों व साधुओं को देखकर महर्षि दयानन्द ने कहा कि ये लोग जगत् में पाखण्ड फैलाकर अपना पेट भर रहे हैं और लोगों को मूर्ख बनाने में लगे हुए हैं।"[12] इसलिए हमें अब जागना होगा और अन्धविश्वास का परित्याग करना होगा। अन्धपरम्पराओं को हटाकर धर्म में अपने आपको प्रवृत्त कर चारों वेदों का पठन–पाठन कर हम सन्मार्ग पर चल सकते हैं –

विलोक्यतां वेद चतुष्टयी परा, निवार्य्य तामन्धपराम्पराऽपरा।
निवेश्यतां धर्मपथे मतिःस्थिरा, न काप्यतो मे कथनाप्यलं
परा।।[13]

वैदिक भारत

पं. अखिलानन्द ने अपने महाकाव्य में लिखा है कि तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर दोहरा प्रहार हो रहा था एक ओर अंग्रेज शासक भारतीय संस्कृति को नष्ट कर लोगों को पाश्चात्य संस्कृति अपनाने के लिए बाध्य कर रहे थे, तो दूसरी ओर कुछ पाखण्डी वैदिक संस्कृति को जड़ मूल से समाप्त करने पर आतुर थे। संस्कृति की रक्षा करना ही हमारा प्रमुख धर्म होना चाहिए। इसलिए महर्षि ने सकलार्थप्रद वेदों का सार संकलित कर वैदिक मार्ग से पथभ्रष्ट लोगों के लिए 'सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' जैसे अनेक ग्रंथों की रचना की, जो लोगों को सुमार्ग दिखाने का कार्य कर रहे थे।

अखिलनिगममंत्रैर्यत्र देवेन दैवात्,
सकलविषयवार्ता मूलभूतां निबध्य।
व्यरचि निखिलविश्वेनातपः संश्रिताना
मतुलसुखनिदानं वेदवृक्षस्यनीचैः।।[14]

आर्य लोगों की उन्नति के लिए समस्त नगरों में वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए उन्होंने कहीं यज्ञ शाला, कहीं गौशाला, कहीं पाठशाला आदि का निर्माण करवाया। वेदों का प्रचार–प्रसार कर स्वामीजी लोगों का जीवन वेदमय बनाने लगे। कवि अखिलानन्द ने अपने महाकाव्य के दशम सर्ग में महर्षि के द्वारा खण्डन किये गए सामाजिक कुरीति 'मृतक श्राद्ध' का वर्णन करते हुए लिखा है – "जिस प्रकार देशान्तर को गए पुरुष के साथ भोजन आदि का प्रबन्ध किया जाता है वैसे ही मनुष्य के मरने पर उसके बान्धवों से दिया हुआ पदार्थ उसके पास स्वतः नहीं पहुँच सकता। स्वामी जी का मानना था कि इस संसार में श्राद्ध उसे कहते हैं जिसमें अपनी श्रद्धा के अनुसार परोपकार की दृष्टि से अच्छे गुण वाले पुरुषों के लिए कुछ पदार्थ मन या वाणी के द्वारा दिया जाये।"[14] इसलिए आर्य पुरुषों को हर काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए –

समस्तकृत्यानि विचार्यसत्यता–असत्यताञ्चाप्यनुसारतो
जनैः।
सदैव धर्मस्य यथायथं पथि, क्रमेण कार्य्याणि
महेश्वरोदिते।।[16]

शिक्षित भारत

राष्ट्रजागरणेच्छा से युक्त स्वामी दयानन्द के अनुसार स्वाधीन देश की अपनी संस्कृति के साथ–साथ अपनी स्वयं की राष्ट्र भाषा व शैक्षिक नीतिहोनी आवश्यक

है। हम लोग केवल पाश्चात्य विद्वानों से मानकर संस्कृत व उसमें निहित ज्ञान–विज्ञान की उपेक्षा करते हैं, जो उचित नहीं है–

वृथा भवद्भिः क्रियते विनिन्दना, स्वदेशभाषां
विदुषामनल्पिका।
मयाप्यनुश्रूयत एव या न ते, पदार्थविद्यामविदुर्बुधा इति।।[17]

"जो पदार्थ या विद्या यहाँ से उठकर देशान्तरों में चली गयी है, उसका केवल यही कारण है कि उमसें कोई प्रयत्न नहीं करता। इस भारत वर्ष में जितना अधिक वेद, शास्त्र और वेदांगों की पढ़ाई में प्रयत्न बढ़ेगा, उतना ही वह उन्नति मार्ग फिर सामने आकर पूर्ववत् उपस्थित होगा।"[18] पं. अखिलानन्द ने महर्षि दयानन्द के स्वदेशी प्रेम को प्रकट करते हुए बताया कि "स्वामी जी के मन में यह उत्कट इच्छा थी कि इस आर्यावर्त में समस्त राजा–महाराजाओं की ओर से एक वैद्य विश्वविद्यालय बने, जो इस देश के लिए भूषण के समान हो।"[19] उस विश्वविद्यालय में पढ़े हुए वैद्यराज अपनी अमृत रूपी स्वदेशी औषधियों से देशवासियों का इलाज करके राष्ट्र को नीरोग बनावें ताकि लोग विदेशी औषधियों और चिकित्सकों पर निर्भर न रहें –

समस्तलोकेऽपि तदेकशाला, विनिःसृता सद्भिषजांवरिष्ठाः।
महौषधैर्व्याधिविनाशनेन, गतामयङ्कुर्युरिमं स्वदेशम्।।[20]

नारी सम्मान की महत्ता से युक्त भारत – स्वामी दयानन्द ने वेदविहित विधवा विवाह का समर्थन कर समाज में स्त्रियों की दशा को सुधारने का प्रयास किया। तत्कालीन समाज में "शीघ्रबोधादि पुस्तकों में विश्वास होने से जगत् में कन्याओं के पढ़ने की प्रथा ही उठकर चली गयी, बाल विवाह होने लगे, जिसका परिणाम समाज में विधवाओं की वृद्धि था।"[21] स्वामी जी का मत था कि जिस प्रकार विधुर पुरुष को पुनर्विवाह का समाज में अधिकार प्राप्त है वैसे ही विधवा स्त्री को भी पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए।

वैधव्यमत्र सकलेऽपियः शैशवे,
परिणयादगमन्कुमार्योपुनर्नियोगात्।
इच्छानुरूपपतिसंगमनेन तासां,पूर्तिं समेतु
मनसानुमतोऽभिलाषः।।[22]

तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दुर्दशा देख कर स्वामी जी ने उसकी घोर निन्दा की। उन्होंने कन्याओंके रक्षण हेतु लोगों को संदेश दिया कि जो लोग देहज लेकर या देकरअपनी कन्याओं का विवाह करते हैं, वे महापाप के भागी होते हैं। "मनुष्यों को चाहिए कि कभी कन्या के ऊपर द्रव्य ना लें।"[23] महर्षि दयानन्द ने इस बात पर भी बल दिया कि राष्ट्र की उन्नति के लिए व समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिए स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार होना चाहिए क्योंकि स्त्री शिक्षा के बिना समाज कभी भी उन्नत नहीं हो सकता। इसलिए राष्ट्रोन्नति के लिए कन्याओं के पठनार्थ विद्यालय खोले जाने चाहिए –

कन्योपयोगिपठनालयनिर्मितौ यद्,
द्रव्यं तथान्यदपि सर्वमिदं पुरेषु।
सामाजिकव्ययत एव नियोजनीयं,
कोषश्च सर्वपुरुषैः परिपूरणीयः।।[14]

संघटित भारत समर्थ राष्ट्र

तत्कालीन राष्ट्र में व्याप्त मज़हबी व्यवस्था का विरोध करते हुए कवि अखिलानन्द ने महर्षि के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा था कि जितने भी मज़हब हैं वे समाज को विघटित करने के लिए हैं, इसलिए मज़हबी सीमाओं को त्यागकर वैदिक धर्मानुसार आचरण करना चाहिए क्योंकि वेदों में गुण और कर्म के आधार पर चतुर्वर्ग व्यवस्था थी जिसमें जातिवाद नहीं था। अतः पुनः हमें संगठित होकर अनेकता में एकता स्थापित कर स्वाधीनता के लिए कृत्य करने चाहिए –

ये केचिदत्र यवनैरथवेशवीयैर्लोभेन वा भयेन कृतस्वधर्मे।
शुद्धेर्बलेन किल ते पुनरार्यधर्मे, व्रात्याइव द्विजगणाः
सुनिवेशनीयाः।।[24]

राष्ट्र की एकता के लिए लोगों को आपस में मिलजुलकर मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए। वैदिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। एक भाषा, एक लिपि, एक भोजन, एक ईश्वर और एक धर्मपालन करना चाहिए। स्वामी दयानन्द ने लोगों को वैदिक धर्म की ओर प्रेरित करते हुए कहा कि "वेदों में कहीं भी हिंसा का विधान नहीं पाया जाता फिर वैदिक कार्यों में उसका विधान क्यों कर माना जावे।"[26] इसलिए अहिंसा के आचरण का पालन करना ही हमारा धर्म है। इसके अतिरिक्त उन्होंने मद्य–मांसादि के सेवन का भी विरोध किया, जिसे कवि ने अपने महाकाव्य में इस प्रकार व्यक्त किया है –

मद्यमांसपरलिका परा लोका योगमार्गव्यवस्थितौ।
न शक्नुवन्ति संस्थातुमेतल्लोके प्रतिष्ठितम्।।[27]

स्वतन्त्र भारत

स्वाधीन भारत में देशवासी निर्बाध उन्नत जीवन जीएँ, जिसके लिए देश में पुनः रामराज्य की स्थापना करनी होगी, इसके लिए देश का शासक सुयोग्य हो अर्थात् "राजा इस प्रकार का होना चाहिए जो कि वेद वेदांग जानता हो, समस्त प्रजा का एकसा पालन करता हो।"[28] जिस राजा के राज्य में वेदों के जानने वाले ब्राह्मण रहा करते हैं उस राजा का राज्य सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होता है।

यस्य राज्ये द्विजन्मानो, वेदवेदाङ्गपारगाः।।
वसन्ति सर्वदा वृद्धिं तस्य राज्यं प्रयात्यलम्।[29]

इस प्रकार कवि अखिलानन्द के इस महाकाव्य में स्वामी दयानन्द के आदर्श राष्ट्र के स्वप्न को साकार करने के लिए किये गए कार्यों का सुन्दर व सुदृढ़ शब्दों में वर्णन प्राप्त होता है। स्वामी दयानन्द के राष्ट्र कल्याण से युक्त कार्यों की सराहना करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते है –"मोह सागर के अन्दर डूबे हुए इस जगत् को वेदरूपी नौका का सहारा देकर स्वामीजी ने बाहर निकाला। वह कौनसा उपकार बाकी रहा जो जगत् के उद्धारार्थ स्वामीजी ने नहीं किया।"[30]

नादेयमम्बु न नदीपरिपालनाय,
यद्वतप्रदीपकलिका परदर्शनाय।
तद्वत्सतामखिलमप्युपकार एव,
भूमण्डले भवति नात्मकृतेऽर्थजातम्।।[31]

उनका सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित था। स्वामी दयानन्द के वैदिक प्रचार व प्रवचनों से लोगों का दृष्टिकोण बदला व लोग राष्ट्रकल्याण के कार्य में जुट गए। "जो कुछ ऋषि ने भारत के अन्दर, भारत की उन्नति

के लिए, भारत की उन्नति में दत्तचित होकर शुभ कार्य किये वे सज्जनों को सुख देने वाले हों।"[32]स्वतन्त्रता आन्दोलन में आर्य समाज व स्वामी दयानन्द का योगदान अप्रतिम है। भारत को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में पिरोने वाले महर्षि दयानन्द रूपी कल्पवृक्ष को नमन करते हुए पं. अखिलानन्द लिखते है–

धन्यःस कोपि जगतीतल चक्रवर्ती,
येनेदृशं जगति कर्म कृतं परार्थे।
कल्पद्रुमोपमितिमाप्तवता किमन्य–,
द्वक्तव्यमस्ति विबुधैरपि कार्यमेवम्।।[33]

इस प्रकार जनहृदय को वैदिक संस्कारों से निर्मल बनाकर संसार को ज्ञान के प्रकाश से उद्भासित करने वाले महानायक दयानन्द और उनके आदर्श राष्ट्र के स्वप्न को प्रस्तुत करता हुआ यह महाकाव्य प्रत्येक युग में राष्ट्रीय विचारों को जनमानस में अभिसिंचित करने का माध्यम बनेगा यही मेरा अभिमत है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *ऋग्वेद भाष्यम् – पं. हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार, श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौनसिटी (राज.) 10/191/4*
2. *दयानन्द दिग्विजयम्, पं. अखिलानन्द शर्मा, आर्यधर्म प्रकाशन शामली (उ.प्र.)53/4*
3. *मनुजनिर्मितभागवतादिका बहुपुराणकथा जगतीतले।*
   प्रथममस्ति निदानमदः कथं
   कलयतान्निगमागमविस्तृतिम्।। वही, 6/4
4. *वही, 89/10*
5. *वही, 6/4*
6. *वही, 103/10*
7. *वही, 42/6*
8. *अधमबौद्धमतादुदयङ्गतां प्रकृतिपूजन*
   विस्तृतिमुद्धुराम्।
   निगमवाग्विशिखैः परितर्जयन्, ससकलां
   सकलामतनोद्भुवम्।। वही, 3/4
9. *वही, 77/10*
10. *वही, 81/10*
11. *तीर्थं तदेवनिगदन्ति बुधाः प्रशस्तं, वेदानवाप्य सकलाङ्गपरान्नु यस्मिन्।*
    मृत्योर्मुखाच्च्युतिमवाप्य विमुक्तदुःखोजीवोमरत्वभुपयाति निरस्तदोषः।। वही, 73/10
12. *य एव लोक ..... किमद्भुतम्। वही, 63/5*
13. *वही, 33/11*
14. *वही 8/8*
15. *देशानुकूलामथ कालकलानुकूलं, पात्रे तपोगुणवति प्रतिदानशून्यम्।*
    यद्दीयते बुधजनैरुपकार बुद्धया, तच्छ्राद्धमित्यनुवदन्ति विपश्चिदग्रयाः।। वही, 26/10
16. *वही, 91/11*
17. *वही, 89/13*
18. *वही,93–94/1*
19. *मनस्यभूदस्य मुनेः प्रशस्ते, भवेद्विशालाकिल वैद्यशाला।*
    समस्तसामन्तधनव्ययेन, भुवस्तलालङ्करणप्रधाना।।
    वही, 38/15
20. *वही, 39/15*
21. *वही, 49/4*
22. *वही, 36/21*
23. *वही, 43/13*
24. *वही, 34/21*
25. *वही, 32/21*
26. *न विद्यते वैदिककर्मसु क्वचिद्विधानमीदृक् पशुमारणोचितम्।*
    विधेर्विधाने विहितात्मभिः स्वयंविचार्यवाच्यपदविग्रहक्रमम्।।
    वही, 57/13
27. *वही 122/14*
28. *वही 209/14*
29. *वही 210/14*
30. *वही 71/18*
31. *वही 87/16*
32. *यत्कृतंमुनिवरेण भारते, भारतोदयकृते शिवं कृतम्।*
    भारतोन्नतिनिविष्ट चेतसा, भारते भवतु तन्मुदे सताम्।। वही,92/18
33. *वही, 90/16*